IJCRT.ORG ISSN : 2320-2882
INTERNATIONAL JOURNAL OF CREATIVE RESEARCH THOUGHTS (IJCRT)
An International Open Access, Peer-reviewed, Refereed Journal

सोमदेवसूरिविरचित नीतिवाक्यामृतम् में न्याय-व्यवस्था

शोधार्थी – नरेशकुमार:

संस्कृत विभाग, पञ्जाब विश्वविद्यालय, चण्डीगढ़।

विषय:- **सोमदेवसूरिविरचित नीतिवाक्यामृतम् में न्याय-व्यवस्था**

भारतीय वाङ्मय में नीति शब्द एक विशिष्ट अर्थ एवं मूल्य की अवधारणा में अभिलक्षित होता है। नीति शब्द को बहुशः धर्म के साथ जोड़ा गया है, क्योंकि धर्म विश्व को धारण करने वाला नियम है, जिसकी आज्ञा पाकर ही संसार का समस्त विधान परिचालित है। सृष्टि के प्रारब्ध से जिस भी समाज, देश, राष्ट्र तथा निजी-जीवन की पारिवारिक संस्थाओं को नीति धर्म के अनुसार चलाने का प्रयत्न दृष्ट फल ही विश्व की संस्कृति है। भारतीय परम्परा के अनसार 'नीतिशास्त्र' दो शब्दों के प्रयोग से बना है- नीति तथा शास्त्र नीति शब्द का अर्थ है- 'नियन्ते सम्लभ्यन्ते उपायादय ऐतिकामुष्मिकार्था वा अनया'। नी धातु से कितन् प्रत्यय करने पर जिसका शाब्दिक अर्थ होता है ले जाने की क्रिया, पथ-प्रदर्शन, चाल-चलन, शील युक्ति, उपाय, निर्देशन, प्रबन्ध आचरण, औचित्य, आचारशास्त्र इत्यादि।[1]

नीतिशास्त्र की परिभाषा-

चाणक्य के अनुसार – आचार्य कौटिल्य 'नीति' के सन्दर्भ में चार विद्याओं का उल्लेख करते हैं- आन्वीक्षिकी, त्रयी, वार्ता तथा दण्डनीति। आचार्य कामन्दक भी कौटिल्य के इस मत को स्वीकार करते हैं।

याज्ञवल्क्य के अनुसार – न्याय के परिप्रेक्ष्य में प्रचलित 'दण्ड' पद को धर्मशास्त्रीय आचार्यों ने साम आदि चार उपायों के अन्तर्गत माना है, जैसा कि याज्ञवल्क्य का कथन भी है -

'उपाया: सामदानं च भेदो दण्डस्तथैव च'।

इस प्रकार उक्त वर्णन से नीति की उपायरूपता स्पष्ट परिलक्षित होती है, किन्तु उसे 'दण्ड' मात्र मान लेने पर उसका स्वरूप सङ्कुचित हो जाता है। याज्ञवल्क्यस्मृति के टीकाकार अपरार्क ने उपायों को राजा एवं प्रजा दोनों के व्यवहार के रूप में वर्णित किया है। नीति का सम्बन्ध लोक एवं परलोक दोनों से है। अतः नीति की महत्ता अति व्यापक है। इस दृष्टि से केवल 'दण्ड' मात्र से नीति का सम्बन्ध उचित नहीं है, अपितु साम, दान, भेद तथा दण्ड इन चारों उपायों को नीति के ही अङ्गरूप में स्वीकार किया जाना चाहिए।

शुक्रनीति के अनुसार– आचार्य शुक्र के मत में नीति 'चतुर्वर्ग फल की प्रदात्री' है। चतुर्वर्ग से आशय है धर्म, अर्थ, काम एवं मोक्ष। इस आधार पर चारों पुरुषार्थ नीतिशास्त्र के मौलिक मापदण्ड प्रतीत होते हैं-

'सर्वोपदेशकं लोकस्थितिकृन्नीतिशास्त्रकम्।
धर्मार्थकाममूलं हि स्मृतं मोक्षप्रदं यतः'॥[2]

शुक्राचार्य द्वारा प्रतिपादित उक्त लक्षणानुसार 'नीति' का अभिप्राय है कि जहाँ धर्म तथा मोक्ष का परस्पर सम्बन्ध पारलौकिक अभ्युदय का कारण बनता है, वहीं अर्थ तथा काम के साथ, संयुक्त होकर लौकिक उन्नयन का भी हेतु है। इस प्रकार लौकिक एवं पारलौकिक दोनों के कल्याण निमित्त 'नीति' का अवलम्बन श्रेयस्कर प्रतीत होता है। आचार्य शुक्र इस रहस्य को निम्नलिखित कथन से स्पष्ट करते हैं-

'सर्वलोकव्यवहारस्थितिर्नीत्या विना न हि'।[3]

अर्थात् लोक के सम्पूर्ण व्यवहारों की स्थिति नीति द्वारा ही सम्भव है। नीति के अभाव में सभी व्यवहारों का उन्मूलन होने से न लोक रहेगा, न परलोक।
आचार्य सोमदेवसूरि ने नीति वाक्यामृतम्' में नीति की परिभाषा देते हुए कहा है कि-

'नीयते व्यवस्थापयेत स्वेषु सदाचारेषु चतुर्वर्णाश्रम लक्षणों,

लोको यस्या सा नीतिः'।[6]

'नीतिर्यथावस्थितमर्थमुपम्भयति'।[7]

अर्थात् नीतिशास्त्र का ज्ञान मनुष्य को कर्त्तव्या कर्तव्य का बोध करा देता है।

न्यायालीय कार्यविधि - मनुष्य में जन्म से हि काम, क्रोध, लोभ, मोह इत्यादि अनेक विकार होते हैं। जब मनुष्य का मन इन विकारों से ग्रसित हो जाता है तब मनुष्य की अपराध की प्रवृति हो जाती है। ऐसा होने से सम्पूर्ण समाज में अव्यवस्था फैल जाती है तथा एक दूसरे के प्रति कटुता एवं वैमनस्य का वातावरण बन जाता है। इस स्थिति को व्यवस्थित करने के लिए राजा न्याय विधान की अनुपालना करता है। राजा उस व्यक्ति की अनाधिकार चेष्टा को रोकता है तथा उसे दण्ड देकर अपराध पर अंकुश लगाने का प्रयास करता है।

न्यायालय- नीतिवाक्यामृतम् के अध्ययन से यह भी ज्ञात होता है कि उपर्युक्त न्यायालय दो प्रकार के क्षेत्राधिकार थे। नीति वाक्यामृतम् के क्षेत्राधिकार थे में दृष्टव्य प्राप्त होते हैं कि न्यायालय के दो प्रकार यथा उच्च न्यायालय अर्थात (प्रथम) वह न्याय क्षेत्र था जिसमें राजधानी क्षेत्रान्तर्रात समस्त विवादों पर निर्णय देना मौलिक अधिकार क्षेत्र व कर्त्तव्य था। प्रथम तो राजधानी की सीमा में होने वाले समस्त विवादों का निर्णय करने का मौलिक अधिकार प्राप्त था। द्वितीय अन्य नगरों एवं ग्रामीण क्षेत्रों में होने वाले निर्णयों की अपील सुनने का अधिकार प्राप्त था। निम्न स्तर के न्यायालयों के निर्णय के विरुद्ध अपील राजा के न्यायालयों में की जाती थी। राजा का न्यायालय सर्वोच्च न्यायालय था और उसके निर्णय के विरुद्ध कोई पुनर्विचार नहीं हो सकती थी। राजा का न्यायालय का निर्णय अन्तिम होता था। सोमदेव के अनुसार राजा के द्वारा दिए गए निर्णय निष्पक्ष होते थे। अतः जो वादी अथवा प्रतिवादी राजकीय आज्ञा का उल्लङ्घन करे उसे मृत्युदण्ड भी दिया जाता था।[8] राजकीय आज्ञा किसी के द्वारा भी उल्लङ्घन नहीं किया जा सकता था।[9]
न्यायसभा के सभ्यों की नियुक्ति तथा योग्यता- न्याय व्यवस्था शासन के स्थायित्व का मूलाधार है। प्राचीनकाल में न्याय कार्य मुख्यतः राजा के अधीन था। परन्तु राज्य के विस्तृत होने के कारण सभी प्रकार के कार्यों को अकेले राजा द्वारा प्रत्येक स्थान तथा प्रत्येक समय में करना सम्भव नहीं था। इसलिए राजा को प्रशासनीय कार्यों में मन्त्रियों इत्यादि की सहायता की आवश्यकता होती थी। नीतिवाक्यामृतम् में न्यायसभा के सभ्यों अथवा सदस्यों की योग्यता के सम्बन्ध में

सोमदेव की यह उक्ति है।[10] अन्य आचार्यों ने भी न्यायसभा के सभ्यों की योग्यता पर विशेष ध्यान दिया है। वेदज्ञ होना, धर्मशास्त्र में पारङ्गत होना, सत्यवादी होना, मित्रामित्र के प्रति पक्षपात रहित होना, स्थिर होना, बुद्धिमान होना, वंश परम्परा से चला आना, अर्थशास्त्र में पारम्गत होना इत्यादि।[11] इसके अतिरिक्त देशाचारों से अनभिज्ञ, नास्तिक, घमण्डी, क्रोधी, लोभी, दरिद्र तथा शास्त्रों को न जानने वाले व्यक्ति को सभ्य नहीं बनाना चाहिए।[12]

वाद के विषय तथा प्रमाण- विवाद पद का अर्थ होता है मुकद्दमे का स्थान अर्थात् विषय याज्ञवल्क्य के अनुसार यदि कोई व्यक्ति स्मृतियों के नियमों एवं आचार के विरुद्ध अनुचित ढंग से अपमानित होकर राजा अथवा न्यायधीश के पास सूचना देता है तो उसे व्यवहार पद कहते हैं।[13]

प्रमाण- राजा के कार्यों की तुलना धर्मराज के कार्यों से की गई हैं। सोमदेव के अनुसार यथार्थ अनुभव, सच्चे साक्षियों एवं लेख इन प्रमाणों से विवाद में सत्य का निर्णय होता है।[14] सोमदेव के अनुसार किसी भी वाद की सत्यता का निर्णय करने के लिए प्रमाणों की आवश्यकता होती है। साक्षी अथवा साक्ष्य वचनों तथा लेख में सोमदेव के लेख को ही अधिक प्रमाणिक मानते हैं।[15]

वे साक्षी के उस साक्ष्य को प्रमाण नहीं मानते जो राजकीय शक्ति के प्रभाव से साक्ष्य देने के लिए बुलाए गए हो।[16] वैश्याओं तथा जुआरियों का साक्ष्य तभी प्रमाणिक है, जब अन्य साक्ष्यों एवं अनुभव द्वारा प्रमाणित हो।[17] झूठे अभियोग करने वाले व्यक्तियों तथा उनके प्रमाणों से सभ्यों को सतर्क रहना चाहिए तथा विचार पूर्वक निर्णय देना चाहिए।[18]

दण्ड का स्वरूप- निरुक्तकार आचार्य यास्क ने दद् धातु से दण्ड शब्द की निष्पत्ति बतलाई है जिसका अर्थ है- 'धारण करना'[19] अर्थात जिसे धारण किया जाए उसे दण्ड कहते हैं। आचार्य सोमदेव ने दण्ड की आवश्यकता पर बल देते हुए कहा है कि जिस प्रकार शरीर के वात-पित-कफ आदि को दूर करने के लिए चिकित्सा शास्त्र होता है, उसी प्रकार राष्ट्र के दोषों को दूर करने के लिए दण्ड आवश्यक है।[20] आचार्य सोमदेव के अनुसार अपराध के अनुकूल ही दण्ड देना चाहिए। जिस व्यक्ति ने जैसा अपराध किया है, उसको अपराध के अनुकूल ही दण्ड देना दण्डनीति है-

'यथादोष दण्डप्रणयनं दण्डनीति'। [21]

आचार्य कौटिल्य का मत है कि स्त्रियों को पुरुषों की उसी अपराध के आधा दण्ड देना चाहिए। [22] आचार्य सोमदेव के अनुसार अपराधनुरूपों दण्ड – '**पुत्रेऽपि प्रणेतव्यः**'। [23] अर्थात् यदि राजपुत्र ने भी अपराध किया है तो उसे भी अपराध के अनुकूल दण्ड मिलना चाहिए।

निष्कर्ष- न्याय-व्यवस्था कहने का अभिप्राय नियम के अनुसार दण्ड विधान से है। न्याय से ही प्रजा में उचित व्यवस्था बनाई जा सकती है। 'नीतिवाक्यामृतम्' में गुरु कहता है यदि राजा पापयुक्त दण्ड देता है, तो राज्य में अराजकता फैल जाती है।[24] इस प्रकार राज्य की समृद्धि एवं शान्ति के लिए दण्ड-विधान अत्यावश्यक है। सोमदेवसूरि ने अपने 'नीतिवक्यामृतम्' में न्याय के लिए न्यायधीश, राजा इत्यादि की योग्यता और दण्ड का स्वरूप प्रमाण आदि का वर्णन किया है, जो तत्कालीन न्याय-व्यवस्था को प्रदर्शित करता है।

ग्रन्थसूची-

1. संस्कृत-शब्दार्थ-कौस्तुम - पृ. 628., संस्कृत शब्दार्थ कौस्तुम - पृ. 628 (सम्पादक) चतुर्वेदी द्वारकाप्रसाद शर्मा, रामनारायणलाल, बेनीप्रसाद, इलाहाबाद – 1977

2. शुक्रनीति - 1.5., शुक्राचार्य, जगदीशचन्द्र मिश्र, चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन

वाराणसी - 2019

3. शुक्रनीति - 1.11

4. चाणक्य नीति – 12., माधवप्रसाद व्यास, भार्गव पुस्तकालय, काशी – 1931

5. याज्ञवल्क्य., - 74 (आचाराध्याय) याज्ञवल्क्य, मिताक्षरा, ब्रह्मवादिनी प्रैस, मद्रास - 1972

6. नीतिवाक्यामृतम् टीका - पृष्ट-2

7. नीतिवाक्यामृतम् - पृष्ठ 83., सोमदेव सूरि, सुन्दरलाल शास्त्री, जैनग्रन्थमाला कमच्छा, ठाकुरवाड़ी, वाराणसी - 1976

8. नीतिवाक्यामृतम् - 28.23

9. नीतिवाक्यामृतम् - 28.25

10. नीतिवाक्यामृतम् - 2874

11. स्मृति चन्द्रिका - 2 पृ. 14., देवणभट्ट, जे. आर. धारपोरे, बम्बई - 1919

12. याज्ञवल्यक्य मिताक्षरा - 22, स्मृति चन्द्रिका 2 - पृ. 212, शुक्रनीति - 45.28

13. शुक्रनीति - 45.64

14. शुक्रनीति - 45.56

15. नीतिवाक्यामृतम् - 27.54

16. नीतिवाक्यामृतम् - 28.12

17. नीतिवाक्यामृतम् - 28.20

18. निरुक्त - 22.11., यास्क, शिवदत्त शर्मा, भारत-भारती प्रैस, दरियागञ्ज, दिल्ली – 1963

19. निरुक्त - पृ. 212

20. नीतिवाक्यामृतम् - 9.2

21. नीतिवाक्यामृतम् - 9.2

22. कौटिल्य अर्थशास्त्र - 3.1., चाणक्य, वाचस्पति गैरोला, चौखम्बा विद्याभवन, चौंक बनारस, वाराणसी – 2000

23. नीतिवाक्यामृतम् - 26.41

24. नीतिवाक्यामृतम् - 104